International Journal of Multidisciplinary Trends

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2021; 3(1): 74-75
Received: 04-11-2020
Accepted: 06-12-2020

पार्वती बारिक
अतिथि प्राध्यापिका, उत्कल विश्वविद्यालयए वाणी विहार, भुवनेश्वर, ओड़िशा, भारत

Corresponding Author:
पार्वती बारिक
अतिथि प्राध्यापिका, उत्कल विश्वविद्यालयए वाणी विहार, भुवनेश्वर, ओड़िशा, भारत

'सुखा बरगद' के आधार पर भारतीय मुसलमानों के मन में असुरक्षा का डर उगने का कारण

पार्वती बारिक

सारांश
भारत में रह रहे मध्यवर्गीय मुसलमानों के मनोविज्ञान विशेषतः असुरक्षा और डर की मनः स्थिति को 'सूखा बरगद' में मुद्दा बना कर पेश किया गया है। इसके अलावा पाकिस्तान के साथ भारत का तनाव और संघर्ष भी असुरक्षा के कारणों मे एक है। बहुत से मुसलमानों की पाकिस्तान के प्रति इसलिए निष्ठा–भावना रहती है कि वह इस्लामी देश है। लेकिन पूरी कौम को पाकिस्तान–परस्त समझ लिया जाना खेद जनक है। इससे दो सम्प्रदायों के बीच दूरी और बढ़ती है। यह मनोवैज्ञानिक भावना है, जिससे बहुत जल्द हमें मुक्त होना चाहिए।

कुटशब्दः सुखा बरगद, साम्प्रदायिकता, असुरक्षा, घृणा, भय, प्रतीक।

प्रस्तावना
भारतीय मुसलमानों के मन में असुरक्षा का डर उगने के पीछे कई कारण हैं, जिन्हें 'सुखा बरगद' में कभी इशारे से तो कभी सीधे कहा गया है। हिन्दुओं और मुसलमानों को जिस इतिहास से परिचित कराया जाता है, वह साम्प्रदायिकता की खाई को और चौड़ा करता है। मुसलमानों के लिए औरंगजेब 'आलमगीर' था, और शिवाजी 'पहाड़ी चूहा'। हिन्दुओं के लिए शिवाजी बहादुरी के प्रतीक हैं और उनके लिए कक्षा में पढ़ाया जाता है कि देश प्रेम का पाठ शिवाजी से सीखना चाहिए। वस्तुतः अकबर – राणा प्रताप, शिवाजी – औरंगजेब के युद्ध को सामंती टकराहट न समझ कर हिन्दू – मुसलमानों की लड़ाई मानना इतिहास की गलत व्याख्या है। इससे तनाव को बढ़ाने में मदद की है। इतिहास की भ्रामक समझ और गलत व्याख्या ने भी मुसलमानों को डराया है। इसके लिए जरुरी है कि शिक्षा – पद्धति और पाठ्यक्रम में वांछित परिवर्तन किये जाएँ, ताकि विभिन्न सम्प्रदाय एक दुसरे से घृणा करने के बजाय निकटता का अनुभव करें। लेकिन देखा यह जा रहा है कि सत्ता में आते ही एक धर्म विशेष की कोशिश इतिहास को तोड़ – मरोड़ कर नए पाठ्यक्रमों में पेश करना और दो धर्मों में फिर तनाव पैदा करना होता है। यह इंसान से इंसान को तोड़ने की कोशिश है। जो अन्ततः 'डर' में परिवर्तित होती है।

दंगे प्रायः मंदिर – मस्जिद, गाय – सूअर आदि को लेकर शुरू होते हैं और इनसे भय का वातावरण बनता है। मुसलमानों को जरा – जरा सी बात में लगता है कि इस्लाम खतरे में है। अब्बू जैसे कुछ ही मुसलमान जानते हैं कि ये मंदिर – मस्जिद सामंती तत्वों के शोषण – तंत्र के अंग मात्र हैं। इनके लिए लड़ना – मरना बेवकूफी हैं।

- **सांस्कृतिकता खोने का भ्रम**

भारतीय मुसलमानों के एक और भय की ओर उपन्यासकार ने इंगित किया है। शिक्षित मुसलमानों को डर है कि उनकी सांस्कृतिक पहचान, उनकी भाषा उर्दू, वेशभूषा – शेरवानी – पाजामें के खो जाने का खतरा बना हुआ है। मुसलमानों का बहुमत सुहैल की तरह मानता है कि मजहब और संस्कृति एक है। सुहैल और परवेज की बातचीत में मुसलमानों की मानसिकता क्र दो विरोधी स्वर गूंजते और टकराते हैं। उपन्यासकार सुहैल की भावनाओं को सहानुभूति पूर्वक और सर्जनात्मक ढंग से उभार सका है, लेकिन वैचारिकता के स्तर पर उसका झुकाव परवेज की ओर लगता है। सुहैल इस देश में मुसलमानों की नियति देख कर पूरी तरह निराश है। उसे लगता है, समूचा प्रशासन और सारे हिन्दू उसकी हस्ती मिटाने को तुले हुए हैं। वह करिश्मों की उम्मीद छोड़ बैठा है। धार्मिक कट्टरता का विरोधी सुहैल का रजत अली के संसर्ग में उतनी ही तेजी से सांप्रदायिक बनना और अन्त में रजब अली की राजनीति से उसका मोहभंग होना एक तरह से आज के यथार्थ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। रजब अली जैसे भ्रष्ट नेता मुस्लिम नौजवानों की सोच को जान बुझकर सांप्रदायिकता की ओर मोड़ना चाहते हैं। हिंदू – मुसलमानों में असुरक्षा का भाव पैदा कर संकीर्ण धार्मिक आधार पर एकजुट करने की कोशिश इसी राजनीति का एक हिस्सा है।

इस उपन्यास में वैचारिक स्तर पर एक गंभीर सवाल उठा है – 'फिर इस्लाम और कम्यूनिज्म साथ–साथ कैसे चल सकते हैं'? उपन्यासकार यहाँ दिखा सकता था कि विभाजन से पहले ये दोनों साथ–साथ चल चुकें हैं। मुस्लिम सांप्रदायिकता मुसलमानों के लिए अलग देश की माँग कर रही थी और कम्यूनिस्ट बुद्धिजीवी उस माँग के जबर्दस्त समर्थक थे।

उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। 'सुखा बरगद' का प्रतीक भी निराशाजनक ही है। उपन्यास के समापन में सुहैल के अवलोकन बिंदु से उसकी डायरी के पन्नों में कहीं कुछ सार्थक, मूल्यवान और आश्वस्तकारी न बच पाने की हताशा वर्णित है। हालांकि उपन्यासकार ने साफ–साफ नहीं कहा है कि 'बरगद' किस विचार या मूल्य या किस संज्ञा–विशेष का प्रतीक है, फिर भी यह निश्चित है कि इसका संबंध भावनात्मक सुरक्षा से है।

भारतीय परम्परा में 'बरगद' संस्कृति का प्रतीक रहा है। उपन्यास में यह 'सांस्कृतिक आस्था' का प्रतीक भी हो सकता है। एक शिक्षित भारतीय मुसलमान जिस भारतीय संस्कृति में अपनी समस्याओं के समाधान समझ रहा था, वह उसे निराश करती है। 'बरगद' को 'जनतन्त्र' का प्रतीक मान लें तब भी यहीं नतीजा सामने आता है और एक सम्प्रदाय – विशेष की असुरक्षाजन्य हताशा को जाहिर करता है।

▪ घृणित राजनीतिक सोच

मुसलमानों के डर को बढ़ाने में सियासत को अपना कैरियर बनाने वाले मुस्लिम नेताओं का योगदान कम नहीं है। उपन्यासकार ने रजब अली के माध्यम से इन स्वार्थी नेताओं की वास्तविकता का बयान किया है। रजब अली एक दल बनाता है 'हिन्दुस्तान ट्रेडिंग' के नाम से, जो मुल्क के वफादार मुसलमानों के हित के लिए लड़ने का संकल्प लेता है। यही रजब अली एक दिन जनसंघ में शामिल हो जाता है। उसके सुहैल जैसे प्रशंसक स्तब्ध रह जाते हैं। लेकिन यह घटना उन्हें और कट्टर तथा साम्प्रदायिक बना देती है। वे इस मुल्क के प्रति बहुत कटु, शासन–व्यवस्था के आलोचक और केवल मुसलमानों तक सीमित 'सोच' को ढोने वाले अतिवादी व्यक्ति के रूप में दिखायी देते हैं। सत्ता और धार्मिक वर्चस्व की ललक दोनों मिलकर इंसान से उसकी इंसानियत छीन लेने की कोशिश में है। वरना यह क्यों होता है कि राष्ट्रीय आयोजनों, सार्वजनिक स्थलों और सरकारी संस्थानों में किसी धर्म विशेष की धार्मिक विधि–विधानों को ही महत्व दिए जाने से उस धर्म के माननेवालों के अहं को संतुष्टि मिल जाती है। इसका विचार ही नहीं किया जाता है कि धर्मनिरपेक्षदेश में किसी एक धर्म को विशिष्टता नहीं दी जाए बल्कि सर्वधर्मसमभाव के निर्माण हेतु एक ऐसी पद्धति का निर्माण किया जाए, जिससे कोई उपेक्षित न महसूस कर सकें। उपन्यासकार ने संकेतों में व्यंजित किया है कि गंगा–जमुनी संस्कृति की चर्चा के बावजूद यह हकीकत है कि हिंदू –मुसलमान एक दूसरे की संस्कृति और मिथकों के बारे में बहुत कम जानते हैं। यह शायद पहले हुकूमत करने के दंभ की वजह से हुआ या आज बहुसंख्यकों के सामने असुरक्षा के अहसास ने प्रेरित किया कि औसत भारतीय मुसलमान कानुन, वेश–भूषा, उपासना, भाषा आदि अनेक स्तरों पर अपनी अलग अस्मिता बनाये रखता है। 'डेमोक्रेसी' को इसलिए धिकारता है कि भारतीय संविधान के अनुसार धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में सभी धर्मों को समानता, सद्भाव की नजर से देखा जाना चाहिए। लेकिन वास्तविकता को देखकर ऐसा नहीं लगता। सार्वजनिक व सरकारी आयोजनों में विशिष्ट धर्म के विधि–विधानों के प्राबल्य से अन्य धर्मावलंबियों को चोट पहुंचती है। यह हमारे जनतांत्रिक व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाता है।

▪ संप्रदायों के बीच अलगाव

इस उपन्यास में सुहैल ने एक जगह मुसलामानों पर हिंदी और संस्कृत लादने की बात कही है। पिछले कुछ वर्षों में हिंदी केवल हिन्दुओं की और उर्दू केवल मुसलमानों की भाषा मान ली गई है। आजादी के पहले ऐसी स्थिति नहीं थी। उर्दू इसी देश में जन्मी भाषा है, लेकिन उसे शुरू से ही फारसी से जोड़ने का, इस्लाम से संबंध करने का, सिर्फ मुसलमानों तक सीमित करने का संकीर्णतावादी प्रयास चलता रहा है। देश की हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं में संस्कृत के शब्द खासी संख्या में हैं। संस्कृत यहाँ की संस्कृति का भाष्य करने वाली भाषा रही है। उससे घृणा करने और उससे बचने का कोई ठोस कारण नहीं है। लेकिन उर्दू देश की अकेली भाषा है, जिसमें संस्कृत शब्दावली का लगभग बहिष्कार सा है। भाषा के नाम पर यह अलगाव मुसलमानों का अपना चुनाव नहीं है। इसका ऐतिहासिक कारण यह है कि संस्कृत में लिखित ग्रंथ जनसामान्य की पहुँच से दूर है। क्योंकि स्वतंत्रता से पूर्व और बाद में भी काफी समय तक संस्कृत को श्रेष्ठ हिंदू संस्कृति का हिस्सा मान लेने और उसके अध्ययन या अध्यापन के अधिकार को ब्राह्मण जाति तक सीमित किए जाने के कारण अल्पसंख्यक, दलित, आदिवासी और स्त्रियों को इसके अध्ययन से वंचित रखा गया। संस्कृत को देवभाषा बताकर उसके साथ पवित्रता की झूठी आस्था जोड़ दी गई। अतः अल्पसंख्यकों के मन में संस्कृत के प्रति आकर्षण अपने आप ही खत्म हो गया। अंग्रेजी साम्राज्यवाद इसे बराबर हवा देता रहा है। 'सुखा बरगद' में उपन्यासकार ने इस मसले को एक और रूप में उठाया है। सुहैल का कहना है – "प्रेमचंद उर्दू के, कृष्णचंद्र उर्दू के, दत्त भारती उर्दू के – बताओ हिन्दी ने पैदा कौन–सा लेखक किया है ?" जबाव में विजय, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, यशपाल, अज्ञेय, भारती के नाम लेता है। लेकिन रशीदा और सुहैल इन नामों से, इनके लेखन से परिचित नहीं हैं। रशीदा ने इस विडंबना को दर्शाया कि हिन्दी साहित्य में उर्दू रचनाकार ससम्मान पढ़े जा रहे थे, लेकिन उर्दू भाषियों को हिन्दी साहित्य से कोई खास लेना–देना नहीं था। रशीदा की इस बारे में स्वीकृति यह दर्शाती है कि जितना दोष माहौल बनाने वालों का है उतना ही व्यक्ति के तौर पर संस्कारों से बंधे रहकर आदत डालने का भी है।

ऐसे उदाहरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि असुरक्षा और डर के कुछ जाले स्वयं मुसलमानों ने भी बूने हैं और उनमें उलझ कर रह गए हैं। रशीदा ने इस विडंबना को हिंदू – मुसलमान के विवाह – संबंध के संदर्भ में उद्घाटित किया है।

इस तरह के उदाहरणों से जहाँ यह प्रमाणित होता है कि उपन्यास में परिवेश की प्रामाणिकता भरपूर है, उपन्यासकार ने अपने प्रत्यक्ष अनुभवों की प्रखर अभिव्यक्ति की है, वहीं यह असुरक्षा और उससे उत्पन्न 'डर' को मनोवैज्ञानिक गहराई के साथ गंभीर किंतु सहज ढंग से उभार सका है। सामान्य लगने वाले 'संदर्भ' भी अनेक व्यंजनाओं और अर्धछवियों से सम्पन्न लगते हैं।

संदर्भ

1. सुखस बरगद - मंजूर एहतेशाम
2. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेंद्र
3. उपन्यास एवं कहानी – डॉ. परमानंद श्रीवास्तव